311

अमरकंटक : तपोभूमि

एक आध्यात्मिक संस्मरण

ॐ ॐ

ॐ

उदय कुमार सिन्हा

१८ जून १९९६

श्री कैलाशपति पांडे जी
को सस्नेह
उदय कुमार
सिन्हा
23.4.05

अमरकंटक : तपोभूमि

एक आध्यात्मिक संस्मरण

ॐ

ॐ ॐ ॐ

ॐ

उदय कुमार सिन्हा

१८ जून १९९६

* पुस्तक :
अमरकंटक : तपोभूमि

* लेखक :
उदय कुमार सिन्हा

* प्रकाशक :
शारदालय (आध्यात्मिक पुस्तकालय)
"उदय–प्रस्थ"
परमानन्दपथ, पटना – ८०० ००१

* द्वितीय संस्करण
फरवरी १९९८

* मुद्रक :
एम. एल. बी. प्रोडेक्ट्स प्रा० लि०
सी–३१, मायापुरी इ० एरिया, फेस २,
नई दिल्ली–११००६४
दूरभाष :– ५१३४०७६/७७

* सहयोग राशि : १५ रूपये मात्र

शारदालय (आध्यात्मिक पुस्तकालय) हेतु प्रकाशित

श्रद्धा-अर्पण

त्रिकाल के

ज्ञात-अज्ञात सभी तपस्वियों को

प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष

जिनका जीवन सत्य-दर्शन एवं

लोक-कल्याण निमित्त

समर्पित है।

सादर, साभार

'उदय'

मुमुक्ष भवन

अस्सी, वाराणसी

१८ जून, १९९९

आशीर्वचन

राम १

दिनांक २-७-६६

श्री उदय कुमार सिन्हा, सहज दयालु श्री भगवान जी की अपार स्नेह भरी दया के प्रभाव से एक अच्छे अधिवक्ता होते हुए भी, जन्मत्तरीय संस्कार वश आध्यात्मविद्या के प्रकाशमय वातावरण में सदा निरत रहने का उनका स्वभाव सा बन गया है।

अतः इनकी सच्चे संत महात्माओं के दर्शन दिव्य ज्ञान की खोज, परमपावन तीर्थ, सुतीर्थ, महातीर्थ में सिद्ध महापुरुषों की तथा स्वयं की अनुसन्धान भरी अनुभूतियों का इस प्रस्तुत पुस्तिका में उद्‌घृत किया गया है, यह पुस्तिका सर्वजनहितकारी कल्याणमय हो।

विद्वत वरिष्ठ जगत गुरू शंकराचार्य
ह० स्वामी कपिलेश्वरानन्द सरस्वती
मुमुक्षु भवन, काशी
बी-११२८ ए-२, अस्सी, वाराणसी

आत्म कथ्य

न तो मैं लेखक हूँ और न साधक और न गृहत्यागी तपस्वी ; पर जाने क्यों बराबर अपने अचेतन मन में इन तीनों के प्रति अनुराग का अनुभव करता आया हूँ , बचपन के अनजान क्षणों में मानता हूँ, चेतन मन ने बराबर चेष्टापूर्वक इस अनुराग को सुषुप्त ही रखना चाहा और मैं सामान्य पथ पर, सामाजिक जीवन के गृहस्थ-जीवन में प्रवेश कर नियति क्रम का पोषक बना। एक प्रतिष्ठा प्राप्त अधिवक्ता बना, जीवन के पाँच दशक तक व्यसनी उपभोक्ता भी रहा। इन्कार नहीं करुंगा कि इस अवधि में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी पंचविकारों का उग्रतम नृत्य भी स्वयं में देखा। पर जीवन के नोंक-झोंक में कटु मधु अनुभवों ने उस सुषुप्त अनुराग को वर्तमान जीवन के अन्तिम लक्ष्य मृत्यु एवं जीवों के शाश्वत लक्ष्य भगवन प्राप्ति के लिये उत्प्रेरित कर दिया। सत्संग, साधु दर्शन, सत् साहित्य अध्ययन, तीर्थस्थानों की यात्रा आदि मेरे लिए एक आवश्यक अंग बनता गया है।

इसी क्रम में अमरनाथ से कन्या कुमारी और सोमनाथ से कामरुप कामाच्छा की यात्रा हुई। पर यात्रा वर्णन का मैं वक्ता बना रहा, लेखक नहीं। १९९४ में अमरकंटक की यात्रा हुई, तब अवकाश प्राप्त प्रोफेसर पत्नी के साथ ही अन्य मित्रों ने आग्रह किया कि मैं इन्हें लिपिबद्ध करुं। मेरे अधिवक्ता (Advocate) व्यक्तित्व ने तो स्टेनो बाबू को डिक्टेशन देने

का अभ्यास कर रखा था । स्वयं लिखने का अभ्यास तो कब का छूट गया था । पर प्रभु की इच्छा, पत्नी ने श्रुतिलिपि का कार्य ले लिया । इस तरह 'अमरकंटक : तपोभूमि' की स्थूल काया तैयार हो सकी। इसमें सूक्ष्म प्राणशक्ति तो परमात्मा का ही काम हो सकता है। एक कवि की दो पंक्तिया याद आ रहीं हैं :-

तेरे दर पर आना मेरा काम ।

मेरी बिगड़ी बनाना तेरा काम ।।

यदा कदा लेखन कार्य में मेरा सहयोग बनारस विश्व विद्यालय में मेरे अध्ययन-काल की देन रही है । उस समय मुझे महामना मालवीय जी, पंडित नन्द दुलारे बाजपेयी, श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी आदि का निकट सम्पर्क, स्नेह तथा दिशा-निर्देश मिलता रहा था। हिन्दी में रुचि एवं योग्यता उन्हीं के आशीर्वाद स्वरुप पा सका हूँ।

प्रस्तुत पुस्तिका में मैंने अमरकंटक यात्रा-क्रम में कतिपय संतों-महात्माओं के सानिध्य से प्राप्त प्रसंगों एवं विचारों का निष्ठा पूर्वक वर्णन करने की चेष्टा की है। निःसन्देह मैं उन तपस्वियों की गहराई में नहीं जा सका हूँ और उन विचारों के प्रस्तुतिकरण में भी अनेक त्रुटियाँ होंगी। मैं उन सबों से क्षमा-याचना करता हूँ। उनके प्रति आभार क्या प्रकट करुँ, वे नमन योग्य हैं-नमन करता हूँ और पुनः उनके दर्शन की कामना करता हूँ।

त्वदीय पाद पंकज ।

नमानि देवी नर्मदे ।।

"उदय कुमार"

संस्मरण प्रवेश

''मैं बराबर कहता हूँ मेरी यात्राएं अब किसी अदृश्य शक्ति के आमंत्रण से होती है। भ्रमण की तो एक स्वाभाविक-प्रवृति बाल्य काल से ही रही है। प्रारम्भ से इच्छा रहती थी घूमने का स्थान देखने की, भारत दर्शन की, पर इस लालसा में मात्र मनोरंजन एवं लौकिकता थी। पहले दोस्तों के साथ घूमता था, बाद में पत्नी के साथ, फिर (माँ, बेटी, सेवक व साथी) के साथ। वह क्रम अभी भी जारी है। यह भ्रमण-लिप्सा कब आध्यात्मिक तृष्णा का रूप ले बैठा है, मेरी पकड़ से बाहर है। किन्तु अब मनोरंजन स्थानों के भ्रमण से ज्यादा भारत साधक-साधिकाओं के साधना स्थल एवं तप भूमि आदि से स्वतः प्रेरित आमंत्रण सा अनुभव करता हूँ और तत्काल अदृश्य-अनुकम्पा से साधन भी मिल जाता है और मैं निकल जाता हूँ। कुछ अंशों तक इसका श्रेय ''भारत के महान साधक'' नामक (तेरह भागों) पुस्तकों की है, इसके लेखक प्रमयनाथ भट्टाचार्य है। मेरी अमरकंटक यात्रा के प्रेरक इन्हीं पुस्तकों में वर्णित महान आत्माएं हैं, जिन्होंने इस पुराण प्रसिद्ध नर्मदा माँ की पुण्यसलिला तपोभूमि को अपनी साधना एवं तपस्या से हमें परिचित कराया है। विशेष रूप से जिन साधकों के वर्णन में अमरकंटक की भूमिका आई है वह गजाधर और मौनी बाबा का प्रकरण है। आत्मा अमर है ब्रह्मलीन उन सभी महात्माओं के प्रति मैं नतमस्तक हूँ, कृतज्ञ हूँ।

इच्छा थी कि मई के प्रथम सप्ताह में पटना से अमरकंटक के लिए प्रस्थान कर दूँ। कुछ लोगों को मेरे इस निर्णय पर आश्चर्य हो रहा था। गर्मी में ''हिल स्टेशन'' के लिए चल देने वाले वकील साहब को इस भयानक गर्मी में अमरकंटक जाने की क्या सूझी है सारे रास्ते भीषण गर्मी

पर शीतलता मिलेगी। ऐसा लगा कि अमरकंटक के बारे में किसी से मुझे सही सूचना नहीं मिल पा रही थी किन्तु यहाँ तो अजीब आत्मप्रण था, किसी अदृश्य निर्णय का। कई पारिवारिक अवरोधों के कारण प्रस्थानदिवस में परिवर्तन आता गया, पर स्थगित नहीं हुआ। क्रमशः मैं २३ मई १६६४ को प्रातःकाल ५ बजे अपनी कार से मुरारी नामक सारथी और राजू नामक सेवक के साथ सपत्नीक चल पड़ा। प्रभू-प्रदत्त इन सुविधाओं के लिए अपनी योग्यता एवं श्रम को श्रेय देता था प्रारम्भ में, किन्तु अब इन सबका श्रेय ईश्वर को देता हूँ।

प्रारम्भ में मैं तीसरे दर्जे के रेल से सफर करता था, धर्मशाला में ठहरता था और रास्ते-रास्ते लकड़ी के कोयले वाले कुक्कर में (पत्नी जब साथ होती थी) खाना बनाकर खाता था। दूसरी स्थिति आई जब परिवार के साथ उच्च श्रेणी अथवा कार से निकल और होटलों में ठहरा। तीसरी स्थिति में सब आराम के सामान के साथ अपने वाहन से निकलता हूँ और यथासम्भव आश्रम में, आध्यात्मिक वातावरण में रहने की तमन्ना रखता हूँ और चेष्टा करता हूँ। चौथी स्थिति की कामना करता हूँ जब वकालत से मुक्ति लेकर, आवश्यकता अनुसार आर्थिक व्यवस्था कर अकेले कुछेक कपड़ों के साथ सन्त-समागम के लिए निकल सकूं। अब देखना यह है कि इस इच्छात्मक रूप की क्रियात्मकत्वरूप कब और कैसे मिल पाता है? ठीक से कब आध्यात्मिक आभास मिल पाता है। निस्सन्देह मेरा जीवन आध्यात्म को समर्पित नहीं है किन्तु बाल्य काल से लौकिक पिता की इच्छा सुनते आ रहा था वृद्धावस्था में वानप्रस्थ चला जाऊंगा, आर्य समाज के आश्रमों में जीवन व्यतीत करूंगा, तुम्हारी माँ मेरे साथ रहेगी और परिवार की देख-रेख तुम करोगे"। उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी, पिता जी सबसे छोटे भाई की शादी के पहले ही रोगग्रस्त (कैन्सर) हो दिवंगत बन गये। मेरे सामने ऐसा कोई बन्धन नहीं उठा। एकमात्र पुत्री की शादी हो चुकी है, पत्नी की स्वतन्त्रता है कि मेरे साथ चले अथवा अपने आवास

में रहकर चिन्तन मनन लेखन करे। मृत्यु तो जिस दिन आनी होगी, अवश्य ही आएगी, जहाँ भी रहें उसमें भय कैसा?

अचानक अरे मैं कहाँ से कहाँ चला गया? अभी तो वाणी का ही संयम नहीं कर पाया हूँ। वाहन से अमरकंटक तक पहुँचने में रास्ते में कारण अकारण कई रोज बितानी पड़ी थी। २३ मई ६४ को पटना से चलकर मैं ३० मई को १०-३० बजे दिन में अमरकंटक की पुण्य भूमि पर पैर रख सका था।

२३ मई ६४ से ३० मई १६६४ तक पटना से अमरकंटक की यात्रा में आध्यात्मिक अनुभूतियों में आत्म-चिन्तन में ही व्यतीत हुआ। मानो कोई अदृश्य-शक्ति मेरी मानसिकता को अमरकंटक की भूमि पर नर्मदा माँ के वात्सल्य की छत्रछाया में रहने योग्य बना रही हो। में अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध मानसिकता के साथ पहुँच सका। इसका मुझे संतोष है और अदृश्य के प्रति असीम अनुराग।

२३ मई को ही एक बजे दुपहरिया को बनारस पहुँच गया। काशी मुमुक्ष भवन में ही सुन्दर स्वच्छ कमरे में तत्क्षण रहने की सुविधा मिल गई। पर बनारस की गर्मी और बिजली की आँख मिचौली। दोपहर को तो गंगा स्नान भी सम्भव नहीं था और पटना से तो स्नान ध्यान करके ही चला था तभी मेरे एक स्वर्गीय मित्र रमाशंकर पाण्डेय के ज्येष्ठ पुत्र विनोद आ गये। मेरे आने की सूचना मिलते ही उनका आना सुखद रहा। पटना से बनारस की दूरी २६५ किलोमीटर है, जिसे तय करने में अपनी कार से ६ घंटे लगे थे। अतः थकावट कोई विशेष नहीं हुई। उसी समय एक और मुमुक्ष आश्रम में गत कई वर्षो से अपना स्थाई निवास बनाये हुए मोहन राजगढ़िया जी भी आ गये। बातों का सिलसिला चला लोक-परलोक की बातें, सुख-दुःख की बातें और समय जाने कैसे बीत गया। इस बीच कई बार बिजली ने लुका-छिपी की; पर हम उसके प्रति सजग नहीं रहे

भागवत चर्चा की हवा ने गर्मी को निर्मूल कर रखा था।

एक प्रश्न उभरा-'काशी में तन छोड़ने से 'मोक्ष' मिलता है। मैंने शंका उत्पन्न की, तब तो जीवन भर पाप करके मनुष्य मरते समय यहाँ आ जाए और मोक्ष प्राप्त कर ले?

पत्नी ने मुस्करा कर मेरी ओर देखा, मानो मेरे मोक्ष प्राप्ति के इस सहज ज्ञान का मूल्यांकन करना चाह रही हो। तत्क्षण मुझे संतों का विश्लेषण याद पड़ गया, .. नहीं भाई काशी नगरी शिवजी के त्रिशूल पर बसी हुई है। यहाँ जो व्यक्ति मोक्ष की कामना से शरीर त्याग के लिए आता है, उसके पाप कटते नहीं हैं बल्कि यहाँ के सत्संग आदि से निर्मूल हो जाते हैं-तन त्याग यदि पूर्ण निर्मूल के पहले हो गया हो पुनः उसका जन्म इसी नगरी में होगा। जब पूर्णता शुद्ध-विशुद्ध होने के लिए जन्म श्रंखला समाप्त होगी तब यही शरीर-त्याग करके मोक्ष प्राप्त कर लेंगे।

इस मध्य आजीवन आवास प्राप्त कई सज्जन आ गये थे। एक ने गहरी श्वास लेकर कहा,-"जाने हमें कितने जन्म लगें?"

मैंने हँसकर आश्वासन दिया-अरे आप ने तो सही रास्ता पकड़ ही लिया है अब तो शिव जी का दायित्व है आपको मोक्ष तक पहुँचाने का।

वस्तुतः मुमुक्ष-आश्रम में एक अलग भवन 'ईश्वर मठ' और एक 'घनश्याम नन्द मठ' के नाम से निर्मित हैं। यहाँ १५० कमरे हैं। जिनके नीचे सुन्दर गुफा भी है साधना हेतु। इन कमरों में दंडी स्वामी रहते हैं जिन्हें निःशुल्क भोजन, दूध दिया जाता है। इन साधु सन्तों एवं दंडी स्वामियों के त्यागपूर्ण, निष्ठापूर्ण, कर्मनिष्ठा एवं साधना के प्रति सजगता सतुल्य है। इनकी आयु एवं काया की विषमता और साधना की समानता हमारे लिए प्रेरक दृश्य था।

ईश्वर मठ में ही एक कमरे में इन दिनों स्वामी श्री भगवत् स्वरूपाचार्य

भास्कर जी कमरा नं० ५ में रह रहे थे। संध्या को हम उनके दर्शन के लिए चले गये। काफी तन-मन-धन की कलुषिता को धोने के लिए ज्ञान रूपी साबुन मिला उनके सत्संग से। सहज भाव से उन्होंने कहा-'एकाग्र मन तो वस्तुतः सबसे शक्तिशाली पदार्थ है। निर्मल मन को एकाग्र होने में देर नहीं लगती है। एटमबम यदि कार्य है तो मन की एकाग्रता कारण है। कार्य की शक्ति कारण में निहित है। यह त्रैकालिक सत्य है।

इसी क्रम में उन्होंने एक घटना से प्राप्त अनुभव सुनाया "एक बार मन्दाकिनी नदी के किनारे एक दुबले-पतले संत घूम रहे थे। अचानक वे मूर्छित हो गये। मैं दौड़ कर उनके पास गया, दूध (गरम) मंगा कर पिलाया। कुछ आश्वस्त होकर उठ बैठे। तनिक भी मलिनता चेहरे पर नहीं थी। मुस्करा कर पूछा-'मुझे क्यों उठाया? मैंने कह दिया, महाराज, मुझे अनिष्ट की आशंका हो गई, इसी से .....।'

शान्त स्वर से कहा उन्होंने कि आत्मा का कभी अनिष्ट नहीं होता, यदि मन वश में हो। मैंने मन को पकड़ लिया है। अभी तो दस दिन मैं बेहोशी में था, तुम कितना दौड़ोगे, जाओ चिन्ता छोड़ो-राम-राम भजो। इतना कह कर वहीं नदी किनारे मस्ती में लेट गये और शून्य गगन को पुलकित भाव से देखने लगे।

दूसरे दिन पुनः मैं उनसे मिला। कुछ लोग उन्हें चिढ़ा रहे थे और उनकी माला को नदी में फेंक दिया खेल-खेल में। संत ने एक दृष्टि माला पर हँस कर ड़ाली और माला प्रवाह की उल्टी धारा में बहते हुए किनारे उनके पास आ गई। उन्होंने उसे उठा कर कहा "देखा माला भी मेरी बात मानती है, मन की एकाग्रता एवं निर्मलता असम्भव को भी संभव कर सकती है, बच्चो, जाओ राम-राम भजो।" उक्त संत मेरी साधना के प्रेरक स्तम्भ हैं।

निस्सन्देह स्वामी भास्कर जी का क्षणिक सानिध्य मेरे लिए प्रेरक बनें।

अमरकंटक की आगे की यात्रा की कठिनाईयों को सहर्ष सह लेने के लिए सात्विक आत्मबल मिला।

दूसरा दिन २४ मई ६४ को प्रातःकाल ५-३० बजे हमने काशी मुमुक्ष भवन से प्रस्थान किया। यहाँ से अमरकंटक की दूरी ७०० किलोमीटर है। मेरी कार यात्रा सिर्फ प्रातःकाल ५ बजे से अन्तिम पड़ाव तक अधिक से अधिक १ बजे तक होती है अब। आयु एवं आज की सामाजिक स्थिति (लूट-पाट, हत्या, अपहरण आदि) का ध्यान रखते हुए शाम की यात्रा नहीं करने का निर्णय लेकर ही घर से चलता हूँ। अतः रीवाँ १ बजे पहुँच कर हमने रहने की व्यवस्था पर ध्यान दिया। ईश्वर की अनुकम्पा से दोनों व्यवस्था सन्तोषजनक हो गई। ठीक एक बार पहले भी मैं आ चुका था और उजला बाघ (White Tiger) भी देखा था। इच्छा थी कि पत्नी को दिखा दूं, पर पता चला कि अब नहीं है।

दूसरे दिन २६ मई की सुबह पुनः ५ बजे हम रीवाँ से चल पड़े और १७५ किलोमीटर की दूरी पर स्थित "शहडौल" पहुँच गये। यहाँ भी क्षणिक प्रयास के बाद रहने का सुन्दर इन्तजाम हो गया, और रात्रि में खाना बनाने की भी सुविधा मिल गई। रात्रि में संयोगवश बिजली ने भी रियायत की। फलस्वरूप २६ की रात्रि में अच्छी नींद आई।

२७ मई ६४ को प्रातःकाल ७ बजे "शहडौल" शहर से प्रस्थान किया हमने। लक्ष्य बिन्दु (अमरकंटक) पहुँचने के क्रम में अन्तिम यात्रा होने वाली थी। मन में एक अजीब उल्लास था और मस्तिषक में एक जिज्ञासा। शहडौल में अमरकंटक के लिए काफी सूचना एकत्रित कर ली थी। कुछ विशिष्ट पदाधिकारियों से भी बात हुई। उन लोगों ने कहा अपने सगे सम्बन्धियों का भी पता दे दिया, जिससे हमें कोई परेशानी नहीं हो। बड़े सज्जन थे वे लोग भी।

मातृ रूप ने नर्मदा नदी एवं पितृ रूप ने सोम नदी के उद्‌गम स्थान

के पुण्यभूमि, तपस्वियों के तपो-भूमि पर मेरी मोटर गाड़ी २ बजे दिन के करीब पहुँची। शहडौल से रास्ता कष्टप्रद नहीं था परन्तु सर्वाकार दुरूह था। शान्त स्थिर वातावरण, आधुनिक शहरी सभ्यता से अछूता यह स्थान आकर्षक नहीं प्रतीत हुआ तपन भरी दुपहरीया, कड़ी धूप ने उन लोगों के प्रति आक्रोश उत्पन्न कर दिया जिन्होंने कहा- "रास्ते में तकलीफ होगी गर्मी में, किन्तु वहाँ पहुँच जाने पर राहत मिलेगी।" और सामान्यतः इस भूमि का दैहिक एवं आध्यात्मिक आनन्द लेने के लिए दशहरा ही उपयुक्त समय होगा। अनुभव एवं सही सूचना के आभाव मुझे जो अनुभव हुआ, उसे व्यर्थ नहीं कहा जा सकता है। तपस्या में काया को स्वेच्छा से कण्ठ साध्य बनाते हैं। हमें इस तपोभूमि में व्याप्त तप की वायु का अनुभव अजीब सुन्दर सन्तोष दे रहा है।

सिर्फ ६ घण्टे के उहापोह के बाद रहने को अत्यधिक अनुकूल व्यवस्था हो गई। वाहन, वाहक और सेवक भी हम दम्पति के साथ मानमर्दे की इस कृपा का अनुभव कर रहे थे। मन में कष्ट पाने की जो आशंका थी वह निर्मूल हो गई। समाचोर पत्र प्राप्ति की देरी, दूरदर्शन और मनोरंजन में अन्य साधनों का अभाव जरुर रहा, किन्तु सन्तों में सत्संग शीतल प्रेरणा वार्तालाप एवं भोले-भाले नगरवासियों के व्यवहार ने इस कमी को कभी महसूस नहीं करने दिया।

२७ मई की सन्ध्या खाना बनाने के लिए सब्जी की आवश्यकता हुई। शेष सभी सामान साथ में था। इच्छा हुई थी कि किसी होटल में खा लेंगे। किन्तु पता चला कि कोई भी होटल ऐसा नहीं है जहाँ आपकी अनुकूल भोजन मिल सके। सब्जी भी ठीक नहीं मिल सकी। ऐसा लगा कि अभी इस स्थान पर ऐसे तपस्वियों का ही निवास है जो इच्छा शक्ति से भी सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं, उनके अर्न्तमुखी व्यक्तित्व को किसी भी बहिर्मुखी साधन की अपेक्षा नहीं है। इसी क्रम से आचार्य रजनीश की एक कहानी याद पड़ गई। जिसका सारांश था- "पहले सर्वशक्तिमान

ईश्वर भी हमारे और आपके तरह साथ-साथ ही रहते थे। मनुष्य अपनी-अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उन्हें २४ घन्टे परेशान करने लगे, तब क्रमशः वे शहर से गाँव-गाँव से पर्वत-पर्वत से गुफा-गुफा से क्षीर सागर तक की यात्रा करने पर भी मनुष्यों से नहीं बच सके तो गणेश जी ने अपनी बुद्धि का अनुपम समाधान दिया उन्हें ''प्रभु आप बाहर छोड़कर प्रत्येक मनुष्य के अन्दर प्रवेश कर जायें, इच्छापूर्ति के लिए मनुष्य बाह्य जगत में भटकते रहेंगे, कभी अन्तमुर्खी नहीं हो पायेंगे और आप उनसे मुक्त हो जायेंगे। ईश्वर ने स्वीकृति सूचना अन्दाज से कहा-'ठीक कहा और इने-गिने जो अन्तमुर्खी होंगे उनकी सभी कामनाएँ मैं स्वयं पूरी करूँगा, उन्हें आवश्यकता ही नहीं रहेगी। सूक्ष्म की शक्ति और व्यापकता को स्वयं सिद्ध है।

वस्तुतः अमरकंटक के साधकों में मैंने यह विशेषता पाई। काफी संख्या में ऐसे साधकों एवं तपस्वियों से मिलने का अवसर मिला जो विरान जंगल शहर से दूर एकांत स्थल, नर्मदा के सुनसान तटों की झाड़ियों में अनजाने और अज्ञान बने ''आत्म-विज्ञान'' को मात्र ''आत्म-चिन्तन'' से प्राप्त कर रहे हैं। समझ में नहीं आता इस वैज्ञानिक युग में सब सुख-सुविधा की प्राप्ति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है, फिर भी व्यक्तिमात्र असन्तुष्ट, तनावग्रस्त और संर्घषरत है और ये साधु-सन्त कैसे मुक्त भाव से विचरण करते हैं। इनमें यह हर्षित मुख और तृप्त आत्मा का आभास हमें मिलता है, हम क्यों नहीं उसे प्राप्त कर पाते हैं? इस क्रम में अमरकंटक में अस्थाई सब से मार्कण्डेय मठ में उपस्थित स्वामी रामानन्द सरस्वती के दर्शन का अप्रत्याशित शुभअवसर मिल गया। वे वस्तुतः ओंकाईश्वर आश्रम उज्जैन के निर्माता, उज्जैन व्यवस्थापक हैं। उन्होंने जो सन्देश दिया उसका सारांश था-मनुष्य का समाप्त तो प्रसन्नता दी है, प्रत्येक स्थिति में मनुष्य को सन्तुष्ट रह हंस कर प्रभु को याद करना चाहिए ... वाणी पर रोक लगाओ, वाणी को मन में समेट लो, मन को आत्मा में और आत्मा को परमात्मा में, फिर प्रसन्नता तुम्हारी

सहचरी बन जाएगी।'

स्वामी रामानन्द जी स्वामी आनन्दपुरी महाराज के आश्रम में ठहरे थे। आनन्दपुरी महाराज शान्त, गम्भीर, स्थित प्रज्ञा एवं प्रज्ञाचक्षु से अलंकृत लगे। मानो भक्ति योग, कर्मयोग आदि की प्रक्रियाओं को पार कर अब ईश-मिलन की प्रतिज्ञा में सबको अपना आशीर्वाद वितरण कर रहे हैं। बड़ी आत्मायता एवं सरलता से वे हम दम्पत्ति से मिले। कोई समारोह न अवरोध है। हमारी कुछ शंकाओं के उत्तर में उन्होंने समझाया "ईश्वर को पाने का प्रश्न कहाँ है, वह अलग कहाँ है तुमसे .... कोई जीव नहीं है जिसमें परमात्मा नहीं है। एक शाश्वत सूत्र में परमात्मा सभी जीवात्माओं में है, यह सूत्र, यह क्रम, यह ज्यौतिलिगम् अटूट है - इसकों टुकड़ों में मत बाँटो। फर्क इतना ही है कि जो सूत्र जो हिस्सा हमारी चेतना से होकर जा रहा है, वह व्यक्ति मात्र के कर्मो के अनुसार धूमिल हो गया है। किसी पर बहुत गन्दगी, बहुत काई जम गई है। उसे साफ करों स्वच्छ करो ...... देखो तुम भी परमात्मा हो जाते हो। देह धर्म का पालन तो होगा ही, पर ईश्वर इस सूत्र विशेष में तुम्हें स्पष्ट अनुभूत होंगें।"

हमने प्रश्न किया-बाबा शारीरिक, मानसिक, आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक वातावरण की कलुषिता तो हमें अपनी कलुषिता को साफ करने का साधन कहाँ दे पाती है फिर पारिवारिक समस्याओं का समाधान। हँसकर उन्होंने कहा, क्यों प्रारब्ध को ललकार रहे हो सबके कर्म सबके साथ हैं। तुम व्यर्थ चिन्ता क्यों करते हो, प्रभु पर निर्भर रहो और स्वयं उसके सूत्र पर व्याप्त गन्दगी को अपने आचरण से धो ड़ालो, तभी तुम किसी के लिए भी स्वतः कल्याणकारी बन सकते हो।

मानव मात्र ने क्या जीव-मात्र में व्याप्त एक सूत्र, उन संसार त्यागी सन्यासी एवं अनासक्त अनुरागी ने बड़ी सरलता एवं सहजता से समझाया। स्वतः अपने पराये सभी के लिए कल्याणकारी बन जाने के विचार अच्छे

लगे। कितना कठिन है यह पथ, तभी तो ऐसे महात्माओं का दर्शन ही कल्याणकारी बन जाता है, आस्था और विश्वास के अनुपात में।

पुनः एक युवक साधक से भेंट हो गई। निर्मल बुद्धि, अहंकार शून्य व्यक्तित्व, कहा उन्होंने-'मैं तो आठ वर्षो से ही जंगल में साधना कर रहा हूँ। अमरकंटक के दीर्घकालीन तपस्वियों से मिलता हूँ और उनसे प्रेरणा लेकर साधना करता हूँ। एक योगी ने एक बार समझाया था कि महात्माओं को सामान्यतः लोग निकम्मे समझते हैं। साधना के नाम पर बैठे किसी आश्रम की रोटी पर आश्रित भिखारी ?

सौम्य, शान्त, भव्य एवं दिव्य से उस तपस्वी ने आवेश रहित मधुर वाणी में कहा था-समझ की बलिहारी है बेटा-महात्मा तो मानव समुदाय में धोबी, चमार और भंगी के रूप हैं। बाह्य लौकिक जीवन में तुम्हारे इस देह-दुर्ग का, दैहिक, दैनिक जीवन का काम क्या इन तीनों के बिना चल सकता है ? ठीक उसी तरह महात्मा धोबी हैं जो मानव मन पर जमे हुए मैल को बुद्धि से गन्दे आवरण को धोते व स्वच्छ करते हैं वे चमार भी हैं, जीवन रुपी उबड़-खाबड़ पथ पर चलने के लिए मनुष्यों को ज्ञानरुपी जूता देते हैं जिससे पाँवों में काँटे नहीं गड़ें। निसन्देह वे भंगी भी है व्यक्तित्व पर आच्छादित मल-मूत्र (पंच विकारों) की सफाई, मोह माया का निराकरण अपनी वाणी रूपी झाड़ू से साफ करते हैं।

युवक साधक ने मुस्करा कर कहा था- 'और निकम्मा' शब्द के उहा-पोह से मुक्त होकर अपनी तपस्या में, साधना में लगा हुआ हूँ। आगे प्रभु की इच्छा।

मैं न तो उस युवक साधक का परिचय प्राप्त कर सका और न उस तपस्वी बाबा का। किन्तु महात्माओं और तपस्वियों की अपूर्व सार्थकता समझ सका। उनके प्रति आभारी हूँ। अपने आध्यात्मिक-जागरण की तृष्णा तो जीव की सुषुप्त कामना बनी ही रहेगी। इसी क्रम में एक पौराणिक

कथा याद आ गई।

एक बार सतयुग, त्रेता और द्वापर युग कलियुग से मिलने आए। कलियुग ने उन्हे द्वार पर रुक जाने का निर्देश दिया। जब तीनों थोड़ी देर बाद उनके अतिथि गृह में उपस्थित हुए तो सतयुग ने कहा-'वाह रे कलियुग तुम इतने बड़े हो गए कि तुमसे मिलने के लिए हमें प्रतीक्षा करनी पड़ी।

कलियुग ने विनम्र किन्तु अभिमान मिश्रित वाणी में कहा-'यह तो ठीक है कि मैं तो आप लोगों से श्रेष्ठ हूँ। आप के युग में मनुष्यों को कठोर तपस्या, कड़ी साधना एवं अनवरत उपासना से भगवान मिलते थे और मेरे कलिकाल में सिर्फ सत्संग संतवाणी श्रवण एवं क्षण मात्र की उपासना से ही ईश्वर प्राप्ति सम्भव है।''

सच में इस दृष्टिकोण से कलियुग का महत्व पुराणों में भी वर्णित है। पर इसकी सत्यता का प्रमाण कहाँ और कब उपलब्ध हो सकेगा ? 'भारत के महान साधक' पुस्तकों के अध्ययन से कुछ प्रमाण मिलते हैं, पर प्रत्यक्ष-अनुभव तो सन्त-समागम व स्वयं से ही मिल पाएगा।

सम्भव नहीं प्रतीत होता है कि मैं अमरकंटक में सन्तों के सारे अनुभवों को लिपिबद्ध कर सँकू। रोटरी क्लब, पटना के सदस्य होंने के नाते मात्र आधा घन्टा बोल सका था । सदस्यों ने और सुनना चाहा था अभिव्यक्ति की इच्छा जाग उठी थी प्रेरणा मिली। स्वान्तः- सुखाय के लिए वक्ता बना, लेखक बना। कहीं सारे अनुभव अतीत के गर्भ मे, विस्मृति के तम में विलीन न हो जाए और मैं पुनः भौतिक-जीवन में डूब न जाऊँ इसलिए भी इनका शब्द चित्र तैयार करना अपेक्षित समझ रहा हूँ। जिससे दूसरों को सुनाने या पढ़ाने की तृष्णा भी समाप्त हो जाए।

अब कुछेक कर्मयोगियों की स्मृति सजग हो रही है। ये कर्म योगी

वस्तुतः स्वयं ममत्व से युक्त होकर जन-जन को अपनी ममता का वितरण कर रहे हैं। अपने आप का ध्यान छोड़ लोककल्याण के लिए दिन में कार्यरत और रात्रि में साधनारत। मैं कल नर्मदा माँ का निर्देश पर्वत का स्नेह और सुरक्षा तथा स्वयं में कलेश्वर स्थित शिव-शक्ति का मार्ग दर्शन एवं अद्‌भुत कार्य करने की क्षमता देखी, इनमें और इन्हें साधनयुक्त करने वाली अदृश्य शक्तियाँ ....।

एक बहुचर्चित बर्फानी आश्रम में बर्फानी बाबा से मिलने का मौका मिला। आश्रम में प्रवेश करते ही मन्दिर दर्शन कर वापस आ रहे थे, एक निराशा का भाव लेकर कि योगी जी से मिलने का सौभाग्य नहीं मिल पाएगा। तभी उनके एक शिष्य ने एक तरफ आने का संकेत किया। देखा कुर्सी पर एक सामान्य से व्यक्ति, नितान्त निर्मोही की तरह बैठे हुये हैं। हमारे प्रमाण के प्रति उनमें कोई उन्मेष नहीं मिला। धृष्ट दर्शक की भाँति हम नीचे बैठ गये। अनायास उन्होंने प्रश्न किया-कहाँ से आये हो? मैनें उन्हें अपना परिचय दिया, आने का उद्देश्य बताया उनके दर्शन की लालसा व्यक्त की और उनसे कुछ प्रवचन देने की योजना।

आत्मविश्वास के साथ उन्होंने कहा-मैं कोई प्रवचन नहीं देता हूँ अब बस प्रसाद ले लो। वे उठ खड़े हुये और अन्दर कमरे में जाकर प्रसाद लेकर आये। हमें प्रसाद दिया आशीर्वाद दिया और फिर तटस्थ बैठ गये। हम प्रणाम करके बाहर आये।

पता चला उनकीं आयु २६५ वर्ष की है। अमरकंटक के वासियों के दादा, परदादा ने उनका सामीप्य पाया था और प्रवचन सुना था। हिमालय की बर्फीली हवाओ में २२ वर्षो तक उन्होंने साधना की थी। इसीलिये उन्हें 'बर्फानी बाबा' कहा जाता है। अमरकंटक में उनका आश्रम वर्तमान में बने आश्रमों में सबसे पुराना माना जाता है। तप-सिद्ध तपस्वो का दर्शन पाकर मैं तृप्त हुआ, भले सतवाणी सुनने का नहीं वे तो भक्ति योग, ज्ञान

योग के साथ कर्मयोग की परिधि भी पार कर चुके हैं, ऐसा प्रतीत हुआ। मन्दिर में शिव, हनुमान एवं माँ नर्मदा का दर्शन हुआ।

धर्म शब्द तो वस्तुतः सनातनधर्म का ही पर्याय है। कलान्तर में सनातन धर्म वृक्ष की कई शाखायें प्रस्फुटित हुई। शखायें ही आज हिन्दुओं का हिन्दु धर्म, मुसलमानों का मुस्लिम धर्म, जैनियों का जैन धर्म, बौद्धों का बौद्ध धर्म आदि नामों से खंड खंड में बट गया है। भ्रमित मानव-समाज एक नारायण को पाने के लिए इन विभिन्न सम्प्रदायों के माध्यम से मंजिल तक पहुँचना चाह रहा है। कोई जीव जीवात्मा परमात्मा से रहित नहीं है, उसी तरह विभिन्न धर्म रूपी सम्प्रदायों में कोई संस्था शाश्वत सनातन वैदिम धर्म के प्राणतत्व से रहित नहीं हैं। सभी धर्मो में व्याप्त एक रूपता भिन्नता में अभिन्नता का सर्म्पक-सूत्र परिलक्षित होने लगे तो निसन्देह हम भ्रममुक्त हो परस्पर के निरर्थक संघर्ष से बच सकते हैं। तब एक विश्व-धर्म, विश्व बन्धुत्व की अलौकिक वायु बह सकती है, जो देश, काल और समय की परिधि को तोड़ दें, और विश्व जन-कल्याण का सेतु बने।

अमरकंटक में अभी उसी वायु की सुगन्ध मिलती है। स्वामी सुखदेवानन्द जो शाश्वत सनातन-सत्य, सृष्टि रचना का गहन रहस्य प्रतिपादित करने हेतु 'श्री यन्त्र' मन्दिर की स्थापना में दिनरात रत हैं ! 'श्री यन्त्र' रेखाओं से निर्मित सृष्टि-रचना का विश्व दर्शन है। रेखाओं का निर्माण बिन्दु से हुआ है। बिन्दु (.) ही वह आदि तत्व है जिससे रेखा, रेखा से शब्द, शब्द से वाक्य और वाक्य से साहित्य रचना हुई है। क्या कोई भाषा देशी या विदेशी बिन्दु के बिना बन सकती है। बिन्दु अमर है, भाषांए निर्मित है। बिन्दु के महत्व को समझ लेने पर विभिन्न भाषाओं का संघर्ष समाप्त हो जाता है। सभी भाषाओं का मूलतत्व बिन्दु विषमता में एकता का संदेश है और इन्हीं बिन्दुओं से निर्मित रेखाओं से त्रिकोण बना है, पुनः इन्हीं त्रिकोणों से हमारे यंत्र बने हैं। ब्रह्माण्ड की रचना इन्हीं त्रिकोणों की रचनात्मक, चित्रात्मक प्रतीक का रूप है 'श्री यन्त्र' शब्द रहित त्रिकोणात्म

प्रतीक को विशाल मन्दिर का आकार दे रहे हैं। सूक्ष्म को स्थूल में लक्षित करने की अथक तपस्या ही तो है यह। "ब्रह्म तो चैतन्य के माध्यम से ही स्पष्ट होता है, इस 'श्री यंत्र' निर्माण पर विदेशों की भी दृष्टि गड़ी हुई है, क्योंकि यह सम्प्रदाय निरपेक्ष धर्म का सृष्टि रचना का प्रतीक होगा। सारगर्भित रहस्य कैसे समझ पायेंगे हम।

अमरकंटक में १६ दिनों की अवधि में स्वामी शुकदेवानन्द जी से चार बार मिलने का सुअवसर मिला। लगा जैसे बहुत जन्मों से बिछुड़े आत्मीय का सामीप्य मिल गया है। लौकिक आयु में तो हम दम्पति से कम ही थे। हम ६० और ७० के मध्य और वह ५० और ५५ के भीतर, किन्तु आध्यात्मिक आयु में वे हमसे जाने कितने बड़े थे। पता चला कि 'श्री यन्त्र मन्दिर' की स्थापना-स्थल पर बारह वर्षो तक वृक्ष के नीचे बैठकर उन्होंने तपस्या की थी। हमने वह वृक्ष भी देखा।

स्वामी शुकदेवानन्द जी ने देश-विदेश का भ्रमण किया है। वे तपस्वी, कर्मयोगी, अद्भुत ज्ञानी के साथ ही एक चिकित्सक भी है। आयुर्वेद एवं अंगों के विशिष्ट बिन्दुओं पर दबाव डालकर रोगनिवारण का प्रशिक्षण भी उन्होंने देश-विदेश में लिया है। योग से रोग निवारण की कई सरल विधियों के साथ ही मेरी पत्नी की कम होती हुई दृश्य-सम्वेदना एवं श्रवण-सम्वेदना के लिए उन्होंने कई प्रयोग बताए अपने आशीर्वाद के साथ। हम दम्पत्ति कभी-कभी ही उस निर्देश का पालन कर पाते हैं।

विश्व में अकेला अजूबा 'श्री यन्त्र मन्दिर' के निर्माण में व्यस्त स्वामी जी ने तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र के साथ ही मनोविज्ञान के माध्यम से हमें सृष्टिकर्ता का परिचय और सामीप्य पाने की दृष्टि दी। मन के विभिन्न पक्ष ज्ञानात्मक, इच्छात्मक और क्रियात्मक को क्रमशः महासरस्वती, महालक्ष्मी एवं महाकाली में निर्देशित बताया।

इसी तरह द्वैत, अद्वैत पर भी विचार-विमर्श हुआ।

इसी क्रम में उन्होंने बहुचर्चित वाक्य का संकेतं किया - 'शक्ति के बिना शिव मात्र शव है।'

पत्नी ने तत्काल पूछ दिया- और शिव के बिना शक्ति?

मुस्करा कर तत्क्षण उन्होंने कहा शिला, पत्थर है पत्नी पति के बिना।

बाबा की बातों में पारिवारिक नेह धारा, सामाजिक सम्बन्ध एवं आध्यात्मिक-माधुर्य मिला हमें। अन्तिम दर्शन के समय उन्होंने पटना आने का आश्वासन दिया है। देखूँ सौभाग्य कब मिल पाता है? सन्त-समागम तो प्रभु-कृपा पर ही निर्भर है।

बिन्दु की अमरता एवं व्यापकता का वर्णन शुकदेवानन्द बाबा से सुना तो बूंद की शीतलता एवं तरलता के स्वरूप का दिग्दश कराया जैन मुनि आचार्य विद्यासागर जी ने। दिगम्बर रूपधारी मुनिजी सम्प्रदाय की संकीर्णता से ऊपर धर्म की व्यापकता के साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। वस्त्र तक का त्याग कर जैन मत के सफल साधक ज्ञान के साक्षात् प्रतिमूर्ति लगे थे। मैं उनसे मिलने गया- नेहपूर्ण दृष्टि के निमंत्रण से निर्भिक होकर मैंने कहा-'मैं आपका दर्शन एवं प्रवचन सुनने आया हूँ, पर मैं जैनी नहीं हूँ।

बड़ी आत्मीयता से उन्होंने संकेत किया हंस कर- तुम जैनी नहीं हो, पर मैं जैन हूँ। और जैनी समदर्शी होते हैं, जन-जन का कल्याण एवं सम्मान करते हैं' मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ क्योंकि सामान्यतः अपने अमर नाथ से रामेश्वरम् एवं सोमनाथ से कामरूप कामाख्या तक को मनोरंजन, धार्मिक, तीर्थ विश्राम आदि भावमिश्रित यात्राओं में ऐसी स्पष्ट सी वाणी सुनने को नहीं मिली थी। सम्प्रदाय विशेष से तो व्यक्ति का बंध जाना स्वाभाविक है और इस बंधन का सम्मान एवं निश्चल आस्था उसका धर्म है। किन्तु अन्य सम्प्रदाय एवं विचार-धाराओं के व्यक्तियों का अपने आश्रम में यों स्वीकार करने की उदारता कम व्यक्तियों में ही पा सका

था।

वस्तुतः मुनी विद्यासागर ने स्नेहशील वाणी में हमारा परिचय पूछा। सब कुछ जानने के बाद बाल-सुलभ मुस्कान के साथ कहा-बड़े भाग्यशाली हो, पारिवारिक-दायित्व से मुक्त हो चुके, अब आध्यात्मिक-दायित्व का निर्वाह करो।

पत्नी ने शंका की,-बाबा, बुढ़ापे में तो अपना शरीर ही सबसे बड़ा दायित्व हो जाता है। आंख की रोशनी, कान की श्रवणशक्ति, पैरों की चलन-शक्ति और मस्तिष्क की क्षमताएं सब तो दाँव पर लग जाते हैं .....। कैसे सम्भव है अब तो अगले जन्म में ही ....।'

रोक दिया उन्होंने, मुस्कान भी प्रखर हो गया-ऐसा सोचती हो क्यों? सम्भावनाएं तो हैं हीं, प्रयास करो।

'आपका आशीर्वाद?'

'हमेशा, हमेशा सबके साथ है' कहकर उन्होंने अपना दाहिना हाथ उठाकर अभय-दान की मुद्रा प्रकट की। उस हथेली में हमें 'ॐ' की प्रत्यक्ष अनुभूति हुई ...... शिरड़ी के साई बाबा की अभयदान हथेली में अंकित 'ॐ' का स्थूल दर्शन का आभास मिला। ईशारे से उन्होंने अपने एक शिष्य को संकेत किया और एक स्व-रचित ग्रन्थ लाने का निर्देश दिया। पुस्तक आई और उन्होंने हमारी ओर बढ़ाया। मैंने सम्मान पूर्वक प्रसाद स्वरूप उस पुस्तक को पकड़ा कि पत्नी ने कहा,- बाबा, इस पर आप अपना हस्ताक्षर कर दें।

'हस्ताक्षर तो नहीं करूंगा, पर दो, कुछ लिख दूं।'

बूंद-बूंद के मिलन से
जल में गति आ जाए

सरिता बन सागर मिले
सागर बूंद समाये।

ओह, कितना विशाल ज्ञानरूपी सागर इस बूंद रूपी व्यक्ति में समाया हुआ है। मुझे स्वामी शुकदेवानन्द जी की याद आई, जिन्होंने बिन्दु को अमर बताया और इन्होंने बूंद को अमृत। अमर अमृत तो एक दूसरे के पूरक हैं। अमृत पीकर अमर हुए देवतागण। अमृत गले तक पहुंचने पर राक्षस राहू केतू बनकर सर्वदा के लिए देवताओं के समकक्ष बन गए।

बूंद और बिन्दु की अमरता का दर्शन करने की दृष्टि महात्माओं ने हमें दी, यह वस्तुतः एक पृथक विषय है उसकी अनुभूति सम्भव है मेरे लिए, अभिव्यक्ति नहीं।

अब एक संसार त्यागी संसारी के साथ कई दिनों तक व्यतीत किया गया स्मृति-कुंज का अनुपम पुष्प। लाल पीले गुलाबों की सुगन्ध के बीच में माँ नर्मदे की तपस्या से प्रतिभा और शिव की समाधिस्थ मूर्ति। इन दोनों पिता (शिव) और पुत्री (माँ नर्मदा) की प्रतिमाओं में प्राणप्रतिष्ठा की प्रत्यक्ष अनुभूति हो रही थी। २ जून १९९४ का प्रातःकाल। कल्याण सेवा आश्रम में हम देखने की कामना से पहुंचे। सुन्दर विशाल आश्रम सजा सजाया। मन्दिर भी अतीव दर्शनीय माँ नर्मदा, शिव बाबा कमलों के आसन पर स्थित प्रभु .... यज्ञ स्थल में नारायण के सभी अवतारों का क्रमबद्ध चित्र-कथा। उपासना स्थल के दिवालों पर नव-ग्रहों का प्रतीक चित्र। मन में एक सात्विक दर्शन की अनुभूति हुई। हे ईश्वर, अमरकंटक में २७ मई से २ जुलाई तक हमें इस प्रभु के उपवन-दर्शन से वंचित क्यों रखा?'

मन्दिर उपवन भ्रमण के बाद इस आश्रम के निर्माता से मिलन की इच्छा हुई। पवनसुत हनुमान की प्रतिमा आँखों के सम्मुख होने पर निराश होने की प्रवृति नहीं है। अपने स्वभाव की दृढ़ता एवं हठता के लिए मैं

बदनाम रहा हूँ। बचपन और युवावस्था की उस वृति के अनुभव एवं उपलब्ध ज्ञान एवं सयंम से नियंत्रित किया है। शाश्वत लक्ष्य की ओर निर्देशित करने की प्रेरणा कौन अदृश्य शक्ति दे रही है, नहीं कह सकता। पर मानस में होने वाले अर्जित लौकिक स्वभाव एवं स्वाभाविक अलौकिक मानवीय मूल्यों के मध्य के संघर्ष की अनुभूति कभी भी हो जाती है। जीत शाश्वत सत्य की होती है, ''सत्यमेव जयते''।

कुछेक वर्ष पहले किसी आश्रम से यों निराश लौटने के बाद अहम्मिश्रित मिथ्या भाव रख मैं पुनः नहीं जाता। अब ऐसी बात नहीं होती है, मैं बार-बार खोज-खोज कर ऐसे महान आत्माओं से मिलने का प्रयास करता हूँ क्यों, यह सोचने समझने की इच्छा नहीं, बस आनन्द आता है। सन्तों ने सुख और आनन्द की भिन्नता भी स्पष्ट की है। सुख बाह्य वातावरण पर सुविधाओं की उपलब्धि पर लोगों के व्यवहार पर शारीरिक मानसिक अनुकूलताओं पर निर्भर करता है, जो नश्वर और परिवर्तनशील है, पर आनन्द! आनन्द तो मन की वह स्थिति है, प्रभु सामीप्य की वह निधि है, जो श्वांस के साथ हर परिस्थिति में साथ रह सकती है। मुझे उसी शाश्वत आनन्द की क्षणिक अनुभूति होती रही है इस अमरकंटक की तपोभूमि में और सन्त समागम में।

इस क्रम में कल्याण सेवा आश्रम के निर्माता व्यवस्थापक सन्त कल्याण बाबा स्तुल्य हैं। यहां की जनता के कल्याण हेतु संत तीर्थयात्रियों, संतों आदि को बाह्य एवं आतंरिक सुख शान्ति प्रदान करने के निमित्त बने हुए हैं वे। मैं बाबा के प्रति आज आभार प्रकट करने की भी धृष्टता नहीं कर पाऊँगा। बहुत अपने लगे हैं वे। बस उनकी काया अमर बन कर अमरकंटक विभूति बने, जैसे आज-कल पहाड़ के अन्तराल में स्थित गुफाओं में कई युगों से तपस्यारत हैं और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभु के निर्देश से जग-कल्याण हेतु अपनी अदृश्य आभा, प्रतिभा एवं यथाशक्ति क्षमता का वितरण कर रहें हैं। कल्यारक उसी कड़ी के स्तम्भ बनें।

सन्ध्या समय ठीक पाँच बजे बाबा से मिलने कल्याण सेवा आश्रम में प्रवेश किया। एक बहुत सुसंस्कृत योग्य (नाम याद नहीं) ने देखते ही कहा 'भैया जी आप सुबह आए थे, आईये आप को बाबा से मिला दूँ।'

बाबाओं से बहुत मिल चुका हूँ। आचार्य मुनि विद्यासागर, शुकदेवानन्द जी से प्राप्त आत्मीयता का ध्यान बिसर गया और आश्रम के महन्तों की महिमा का ध्यान आ गया । जाने कैसे वृद्ध, गुरुगम्भीर व्यक्तित्व के होंगे कल्याण बाबा पर आश्चर्य कमरे मे एक पत्थर के बेंच पर गेरुआ वस्त्र धारी व्यक्ति बैठे थे। बगल में एक उगलदान था और हाथ में मंजन। चारों तरफ भक्त, दर्शक और जिज्ञासु बैठे थे। हम भी उनमें शामिल हो गये। बाबा ने हमें देखा मुस्कान भरी सौम्य दृष्टि-परिचयात्मक बातें हुई। अनायास मैनें कह दिया- 'बाबा, आप मुँह धो लें तब बात करेगें। बाबा तो मुस्करा कर रह गये, पर उनके एक भक्त ने कुछ अजीब दृष्टि से मुझे देखा और मुझे समझते देर नहीं लगी कि मैनें कुछ अप्रत्याशित कह दिया। बाद में पता चला कि बाबा की यह दैनिक क्रिया है, कई कल्याणकारी सेवा कर्मों में व्यस्त रहने के कारण समय की कमी हो जाती है अतः अपने व्यक्तिगत कार्य का समय भी वह दर्शकों को दे देते हैं। यथासम्भव सिर्फ साधना काल में वे नहीं मिल पाते हैं। थोड़ी देर बाद उठे अच्छा मैं स्नान करके आ जाऊँ। मानों हम से अनुरोध कर रहें हों। पहली दफा अनुभव किया कि 'अहम् ' पर इतना नियंत्रण भी रखा जा सकता है। सामान्यतया तो आश्रम के व्यवस्थापक अपने अहम् का दूसरों पर आरोपण करते हैं और यह तो अपने नम्र आचरण से हमें ही नत-मस्तक हो जाने को बाध्य कर रहें हैं।

हम बैठ कर आपस में बात करते रहे। बाबा स्नान कर आए मुझसे ही कहा-चलिये सिन्हा साहेब आप को घूमा दूं।

और अमरकंटक के रास्ते पर कंकड़ों के पथ पर बिना चप्पल के

मस्त से वे निकल पड़े आध्यात्मिक वार्तालाप का क्रम चलता रहा और मैं पूर्व-परिचित स्नेहो आत्माय से संग चलने का अपूर्व अनुभव करता रहा। आश्रम के निकट ही एक निर्माणधीन विशाल भवन में हम प्रवेश कर गए। 'बाहर एक बोर्ड लगा था-कल्याण सेवा चिकित्सालय।'........ उस चिकित्सालय के प्रत्येक स्थल का बाबा ने निरीक्षण किया, आवश्यक निर्देश दिया और मस्त मुक्त भाव से बाहर सड़क पर आ गये। काफी समय हो गया था। इस बीच मेरी पत्नी से उन्होंने कहा-सिन्हा साहब ने कहा था कि तुम्हारे पाँव में दर्द रहता है अतः तुम साथ नहीं आ सकोगी।

पत्नी ने शान्त शब्दों से कहा-'आप की प्ररेणा और आशीर्वाद।' वे तो चलते रहे, मानों सुना ही नहीं, मानों आत्म प्रशंसा सुनना उनका ध्येय नहीं। मुझे याद पड़ा कि उन्होंने पूछा था पत्नी के बारे में। वे कब आकर हमारे साथ हो ली थी मैं भी ध्यान नहीं दे सका था। मैं तो उन्हें आश्रम में रुकने को कह कर आया था।

चलते-चलते बाबा ने कहा-'खाना खाकर जाना ! मैं आदत से लाचार बोल पड़ा-नहीं बाबा खाना तो सेवक ने बना ही लिया होगा-जाकर निश्चिन्त होकर खाऊँगा।' पत्नी ने मेरा अनुमोदन कर दिया, पर विवशता वश शायद। ऐसा लगता था कि मेरा नकारात्मक व्यवहार उन्हें अच्छा नहीं लगा। पर बाबा पर कोई असर नहीं था वे निर्लिप्त थे। आश्रम में आश्रमवासियों, साधु सन्तों, तीर्थ-यात्रियों, पर्यटकों आदि सभी के लिये खाने की मुफ्त व्यवस्था थी। मानो अन्नपूर्णा उनके माध्यम से इस प्रकार का वितरण कर रही है अपने अक्षय भंडार से।

बाबा के व्यक्तित्व एवं स्नेह आंमत्रण से बंधे हुए प्रातः नौ बजे पुनः हम आश्रम में पहुँचे। बाबा स्नेह से मिले 'आत्मा, परमात्मा, दुर्गासप्तशती, आदि पर अनेक शंकाओं का समाधान बड़ी सरलता से कर दी उन्होंने। बाल्मीकी रामायण एवं तुलसी रामायण के विभिन्न भिन्नताओं का विवरण

करते हुए उन्होंने कहा-'मैं तो अनुभूत सत्य बोल रहा हूँ। विद्वान तो हूँ नहीं। शंकाओं सम्बन्धी उनके विचार कहीं कहीं मौलिक एवं तर्कसिद्ध लगे हमें, उनका वर्णन विषयान्तर हो जायेगा और फिर वार्ता का कलेवर भी भीमकाय होने लगेगा। अतः स्मृति को सजग रखने के लिए संकेत सूत्र लिख देना अपेक्षित है मेरे लिए।

१२ बज गये और फिर वही आमन्त्रण "खाना खाकर जाना" और मेरा फिर वही नकारात्मक उत्तर। पर इस बार पत्नी ने कहा-'बाबा' मैं खाना खाकर जाऊँगी। बाबा ने निश्चल हंसी से कहा, ''फिफ्टी फिफ्टी''।

पुनः मेरी 'ना' का कोई प्रभाव उनपर नहीं था। वस्तुतः इस व्यक्ति पर तो दूसरों के उल्टे सीधे व्यवहार का कोई प्रतिकूल प्रभाव ही नहीं पड़ता है। कैसे साध लिया है स्वयं को इन्होंने। इस बार वे स्नेह भरे आदेश के स्वर में बोले-'वहां उस अतिथि गृह में अकेले पड़े हो, यहाँ आ जाओ, आराम से बात होगी और उसी नम्र भक्त सेवक को बुलाकर उन्होंने कहा-'खाली कमरे सिन्हा साहब को दिखा दो और जो पसन्द हो बुक कर दो।'

मैनें फिर कहा, बाबा अभी नहीं मैं दो दिन के बाद आ जाऊँगा।

बाबा निर्विकार रहे। बोले-ठीक है, देख तो लो बाद में ही आ जाना। मैं पर १० जून को बाहर चला जाऊँगा।

''बाबा तब हम आकर क्या करेंगे आप जब नहीं रहेंगे।

मैं तो ११ को आ जाऊँगा।''

मैंने कहा-मुझे तो १५ जून के प्रातः काल अमरकंटक छोड़ना है। रास्ते में ठहरने के लिए जगह आदि का प्रबन्ध किया गया है।

'मैं १३ तक आ जाऊँगा, तब तक यहाँ शान्ति से रहना ईश्वर को

याद करना और लोग तो रहेंगे ही।'

पर बाबा के बिना आश्रम कैसा स्पन्दनहीन हो जाता है इसका अनुभव १० जून के प्रातः काल से १५ जून १६६४ के प्रातः काल तक मैंने बड़ी गहराई से अनुभव किया। बाबा का आग्रहभरा आमंत्रण क्यों था, नहीं कह सकता किन्तु उस आश्रम में उनका वियोग खलता रहा। हुआ यह था कि ६ जून के प्रातः काल कल्याण आश्रम में मैंकल सदन के एक कमरे में प्रवेश किया। उसी दिन बाबा निर्मित महिला आश्रम में पूजा एवं भण्डारा था। यह महिला आश्रम विधवाओं, आदिवासियों, अनाथ महिलाओं, परित्यक्ता एवं अभावग्रस्त महिलाओं के कल्याण हेतु कुछ दूरी पर स्थित है, अभी उसे भी पूर्ण आकार लेना है। प्रयासरत है बाबा ! अभी वहां तक पहुचने का पथ छोटा होने पर भी दुर्गम सा है। सम्भव है कल्याणकारी शासन प्रशासन का ध्यान एवं कल्याण बाबा को जन कल्याण की इच्छाशक्ति से यह काम निकट भविष्य में पूरा हो जाए। हमसब आश्रमवासी उसी महिला आश्रम पहुँचे। पूजा उपासना आरती और भोजन वहीं हुआ। बाबा साथ रहे : वही गेरुआ धोती, एक वस्त्र उदार विशाल वक्षस्थल सबको स्नेहदान देने को तत्पर चप्पल रहित पाँव, भीषण सूर्यताप आदि का कोई प्रभाव उस योगी की कार्यक्षमता में अवरोध नहीं उत्पन्न कर पा रहा था।

शाम को हम थके से वापस आए। रात्रि में भोजन के बाद थोड़ी देर बाबा का सामीप्य मुझे मिला। पत्नी तो बेहद थकी थी, नहीं मिल सकी। उसके दूसरे दिन प्रातः काल वे जल्दी-जल्दी बाबा से मिलने के लिये अपना व्यक्तिगत पूजा समाप्त कर उठी।

"मैं बाबा के पास जा रही हूँ।" बाबा के पास! वे तो सुबह ही बाहर चले गये है अब १३ को लौटेगें।

पत्नी स्तब्ध रह गई-बाबा चले गये ? उन्होंने तो १० की रात्रि में जाने की बात कही थी।

"नहीं, आज ही एक भक्त का आमंत्रण आ गया कोई विशेष कार्य हेतु।"

पत्नी कुछ निराशा के साथ बोल पड़ी-ओह इस अनासक्त अनुरागी की क्या लीला है। इतना प्यार स्नेह और अपनेपन से हमें अपने पास बुलाया और स्वयं दूर चले गये।

फिर हम बाबा से नहीं मिल सके। कई कल्याणकारी कार्यों में व्यस्त रहने के कारण बाबा १५ जून की सूबह तक नहीं आ पाए और हमने १५ जून को प्रातः काल अमरकंटक से प्रस्थान कर दिया। आने के बाद उनसे पत्र सम्पर्क भी नहीं हो पाया है। उनकी नर्मदा परिक्रमा का आमंत्रण मेरे पास सुरक्षित है। देंखे वह अनासक्त अनुरागी कहीं उस अवसर पर मुझे अपना अनुराग दे पाते हैं या नहीं। मैं तो प्रयास करुंगा ही फल पर नियंत्रण नहीं। कृष्णलीला सुना है पढ़ा है। अब कृष्णभक्त कल्याण कृष्णलीला का कब स्वाद ले सकूँगा ?

इस तंपोभूमि की गाथा तो नर्मदापुराण में भी नहीं समा पाया है, मैं कैसे कह पाऊँगा ? तीन नदियों का उद्गम स्थल-नर्मदा, सोन और महानदी कहा जाता है इसे। भगवान शंकर यहाँ के तपस्वियों, साधकों एवं योगियों की रक्षा हेतु, दानवों से परित्राण देने यहाँ तपस्यारत हुए थे। उनके भीषण तप से उनके सूक्ष्म शरीर से स्वेद प्रवाहित हुआ और उस बूंद-बूंद ने सरिता का रूप ले लिया......नर्मदा नदी का अवतरण हो गया।

आचार्य मुनि विद्यासागर की उन पंक्तियों को याद दिला देती हैं -

बूँद-बूँद में मिलन जल में गति आए ....

दो नदियों का उदगम स्थान देखा हमने। इसी क्रम में एक अनजान अनाम साधु बाबा से मिलने का अवसर मिला। उन्होंने कहा था- 'तुम

अपने भाग्य के निर्माता स्वंय हो, तन, मन, धन से शुद्ध विशुद्ध रहने का अभ्यास करो, भाग्य निर्माण में चेष्टा रत रहो पर भाग्य के निर्णायक बनने की घृष्टता से बचो।'

उस वयोवृद्ध साधक से यों ही पूछ बैठा था बाबा, इस कलियुग में तो दुष्टों का उत्कर्ष साधु स्वभाव वालों का अपकर्ष एक सामान्य बात हो गई है। कैसे हमें सत्कर्म के लिए प्रेरणा मिले?

इसी पर बाल सुलभ मुस्कान से उन्होंने उपरोक्त निर्देश दिया था। आगे भी कहा था उन्होंने-

निर्णायक तो सिर्फ वही अदृश्य शक्ति है, निराकार ब्रह्म। सृष्टि के संविधान और नियति के नियम का सर्वेसर्वा .... हम क्या जानें उस रहस्य को।

एक दृश्य और स्मृति-नयन के सम्मुख आ रहा है। कल्याण सेवा आश्रम के नज़दीक एकदम नव-निर्मित मन्दिर 'शिवगोपाल' की स्थापना दिवस के अवसर पर एक सुन्दर मन्दिर को देखते ही प्राण प्रतिष्ठा का महत्व समझ में आया। इस धार्मिक अनुष्ठान को अबतक मैं नगण्य समझता था। वस्तुतः इस अनुष्ठान के बाद निर्जीव मूर्तियों में भी एक अजीब सजीवता आ गयी ऐसा प्रतीत हुआ मुझे। इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक मार्मिक सत्य उभर कर आया। एक दम्पति का पुत्र कम आयु में ही कालकलवित हो गया। उस दम्पत्ति ने कृष्ण कन्हैया में अपने मृत पुत्र का दर्शन करना चाहा। उसी क्रम शिवगोपाल मन्दिर का निर्माण कराया है। वहां के पुजारी ने बताया शिव के साथ गोपाल का मन्दिर तो कहीं और है ही नहीं। 'माँ की कृपा ने इस दम्पत्ति को कैसी अनुपम दृष्टि दी कि उन्होंने अपने मार्मिक अनुभव की चिन्गारी को एक अमर प्रकाश में बदल दिया। शिव और कृष्ण अवश्य ही उन्हें रचनात्मक शक्ति, आध्यात्मिक जिज्ञासा एवं परम सन्तोष प्रदान करेंगे।

अन्ततः अमरकंटक की इस यात्रा से लौटते समय भी कई स्थानों पर रुकना पड़ा था। जबलपुर में भेड़ा घाट (मार्वल रौक) विश्रामगृह न० २ में आसानी से व्यवस्था हो गई। यहाँ पुनः नर्मदा माता की अविराम गति से संगमरमर के उज्जवल पत्थरों को अलंकृत देखा। दोनों स्थलों पर उपस्थित तपस्वियों एवं साधकों में सरलता एवं व्यवहार की उदारता देखने को मिली। इसके अतिरिक्त प्रकृति के सुन्दर सुरक्षित पर्वत से झरना एवं नर्मदा नदी से अलंकृत इस पुण्य स्थल में दर्शनीय स्थान भी अनेक हैं। 'जलेश्वर महादेव' तो अपना एक विशेष महत्व रखते है तो कपिलधारा ने गंगासागर (बंगाल स्थित) के कपिल आश्रम की याद दिला दी। हमारे साधकों ने कितना भ्रमण किया था तीर्थस्थलों का । तीर्थस्थान का महत्व तभी तो वेद पुराण, रामायण, महाभारत सभी ग्रन्थों में पाया जा रहा है। पर दूध-धारा स्थित अमरकंटक में दूध का अभाव .कलियुग के प्रभाव को परिलक्षित कर रहा था।

मैं पहले भी यहां दो बार आ चुका था और यहां के निवासियों से नर्मदा मां के शिवपुत्रों के रूप में रात्रि भ्रमण, कष्टपीड़ित भक्तों पर अनायास उनकी कृपा कथाएं सुन चुका था। भक्त के लिए नर्मदा के जल दुग्धधारा में परिवर्तित होने की कथा, कंकड "कंकड़ में शंकर" की उपस्थिति की आस्था जैसी अनेक प्रेरक-कथाओं का पुनरावृति श्रवण हुआ। कलाकार सिन्हा परिवार से भी पुनः मिलने का मौका मिला। २ वर्ष पहले १६७४ में हम पंचमढ़ी से लौटते वक्त यहाँ ठहरे थे और सिन्हा परिवार की आत्मीयता की स्मृति लेकर वापस गये थे। पुनः ५ वर्ष पूर्व साई बाबा आश्रम से लौटते वक्त इनसे मिलने का अवसर मिला था और अब यह तीसरी बार। समय की गति ने यहाँ कई प्रशंसनीय-परिवर्तन देखने का अवसर दिया। सिन्हा परिवार से नर्मदा माँ की पुनः कई चमत्कारी कथाँए सुनने को मिली। यहाँ भी दो महात्माओं का दर्शन मात्र हुआ। अमरकंटक वाली आत्मीयता का अनुभव नहीं हो सका। भेड़ा घाट से "धुआँधार" के

आस-पास नव-निर्माण को देखकर प्रसन्नता हुई। प्राकृतिक दृश्य और नर्मदा की शिव-शिलाओं पर अठखेलियाँ वस्तुतः पिता की गोद में पुत्री की स्वच्छन्द निर्भीक लीला प्रतीत हो रही थी।

जबलपुर के अनेक मन्दिर और महात्माओं के दर्शन सुखकर, सात्विक अनुभव देते रहे। जैन मन्दिर तो बेहद आध्यात्मिक प्रेरक स्थल लगा।

जबलपुर से मैहर में शारदा माँ का दर्शन कर हम बनारस पहुँचे। बनारस से दूसरे दिन प्रस्थान कर पटना, अपने स्थायी निवास में पहुँच गये। इस अस्थायी जीवन का स्थाई निवास है कहाँ?

वस्तुतः इस जीवन में सत्य-दर्शन का एक दौर, एक प्रयास और समाप्त हुआ। भविष्य तो प्रभु ही जानें। अभिव्यक्ति को तो विश्राम देना ही होगा-अन्यथा एक अभिवक्ता का वक्तव्य श्रोता के लिए कष्टसाध्य हो जायेगा। सत्य- की खोज, जिज्ञासा की पिपासा, आत्मतोष की तृष्णा क्या कभी समाप्त होने की है? अतः अब फिर कभी बोलने, लिखने का प्रयास कर सकूं, यही कामना है।

पत्नी ने कागज और कलम को एक तरफ कर मुक्ति की साँस ली मानो; आभार प्रकट कर रही है माँ नर्मदा को, एक यात्रा की समाप्ति पर।